खाकी

कॉर्पोरेट कृषि से अपराधीकरण की सुनामी आ सकती है

विकास नारायण राय

मोदी सरकार के कृषि कानूनों की वापसी पर सहमति न बन पाने से दिल्ली की किसान घेराबंदी कसती जा रही है। इस आन्दोलन में देश भर के किसानों का प्रतिनिधित्व बेशक है लेकिन अगली पंक्ति में पंजाब के सिख किसान जत्थे ही दिखते हैं। सरकार ने फिलहाल धैर्य दिखाया है लेकिन मोदी समर्थक मीडिया में उन्हें खालिस्तानी तक कहा गया। याद कीजिये, 28 वर्ष पूर्व, नवम्बर 1982 में, तत्कालीन केंद्र सरकार से वार्ता टूटने के बाद, लोंगोवाल अकाली दल का धर्म-युद्ध मोर्चा एशियाड गेम्स में बाधा डालने का एजेंडा लेकर दिल्ली प्रवेश में असफल रहा था। उन्हें हरियाणा में बलपूर्वक अपमानित कर रोक दिया गया था जो पंजाब में एक दशक के खूनी दौर का शुरुआती अध्याय सिद्ध हुआ। समय बताएगा, इस इतिहास से सबक लिया गया या नहीं।

लगता है, धोखाधड़ी से लाये तीन कृषि कानूनों के पुरजोर विरोध की गहमागहमी में तीन महत्वपूर्ण पहलू बहस से छूट गए हैं।

1. कॉर्पोरेट कृषि से जुड़े तमाम आयामों का वित्त-पोषण कहाँ से होने जा रहा है? जाहिर है, प्रारंभिक वर्षों में निवेश की जाने वाली राशि बहुत बड़ी होगी और सरकार के पास भी कॉर्पोरेट के लिए अथाह पैसा नहीं होगा।

2. हरित कृषि बाजार से कॉर्पोरेट कृषि बाजार के अनुरूप ढलने के क्रम में संभावित सामाजिक परिवर्तन क्या होंगे? विशेषकर आंतरिक विस्थापन और पारिवारिक संरचना को लेकर।

विरोध की गहमागहमी में तीन महत्वपूर्ण पहलू बहस से छूट गए हैं

3. क्या कॉर्पोरेट कृषि परिदृश्य की असुरक्षा में देहात के युवाओं के बीच अपराधीकरण की एक नयी सुनामी नहीं आएगी?

श्रीमती इंदिरा गांधी के जमाने में फलीभूत हुयी हरित क्रांति में उन्नत बीज, रासायनिक खाद, भूमिगत जल-दोहन और यंत्रीकरण के समानांतर उस दौर के बैंक राष्ट्रीयकरण की भी महती भूमिका रही। इसने पहली बार किसानी में पूंजी निवेश के रास्ते खोल दिए थे और साथ ही किसान के एक वर्ग को संपन्न बनाने और देश को खाद्यान्न में आत्मनिर्भर होने के भी। आज, कॉर्पोरेट कृषि के तमाम समर्थक श्रीमान नरेंद्र मोदी के कृषि कानूनों को दूसरी कृषि क्रान्ति का जनक बता रहे हैं। यह आकस्मिक नहीं कि इन कृषि कानूनों को लागू करने के समानांतर ही, कृषि मुनाफा हड़पने की इस अभूतपूर्व कवायद में, वांछित पूंजी निवेश के लिए, कॉर्पोरेट को निजी बैंक खोलने की सुविधा भी प्रस्तावित है।

यह भी आकस्मिक नहीं कि कॉर्पोरेट कृषि का सडकों पर मुखर विरोध कर पाने में हरित क्रांति से मजबूत हुआ किसान वर्ग आगे है। लेकिन मोदी सरकार अगर उनसे वार्तालाप करने को विवश हो रही है तो वह इसलिए कि देश भर में कोई भी किसान तबका, यहाँ तक कि आरएसएस का किसान संगठन भी, उसके कृषि कानूनों के समर्थन में आगे नहीं आया। यानी, राष्ट्रीय राजनीति फिलहाल इस अंधी गति से कॉर्पोरेट कृषि नीति से कदमताल को तैयार नहीं दिखती।

क्या समाज तैयार है? हरित क्रान्ति से बल पायी बाजार व्यवस्था ने देहात में युवाओं के शहरी विस्थापन और संयुक्त परिवार विखंडन की जमीन तैयार की; कॉर्पोरेट कृषि का कॉन्ट्रैक्ट चरित्र और बंधक बाजार इसे अगले चरण में ले जायेगा। शायद मानव तस्करी को क़ानूनी मान्यता दिलाने और परिवार विहीनता को स्थापित कराने की हद तक! दुनिया भर में इस व्यवस्था का अनुभव बताता है कि यह राम राज्य की दिशा में तो नहीं ही जायेगी।

बाजार के चरित्र का अपराधीकरण से क्या सम्बन्ध है, इस पर कम बात होती है। क्योंकि, अपराध को नैतिक या क़ानूनी उल्लंघन के रूप में देखने की आम रवायत है, न कि समाज के वित्तीय ताने-बाने में बदलाव के सन्दर्भ में। इस नजरिये से कॉर्पोरेट कृषि व्यवस्था के संभावित प्रभाव को आंकने के लिए पारंपरिक खेती से हरित खेती में बदलने के दौर के आपराधिक परिदृश्य की यह एक झलक देखिये।

1986 में मैं रोहतक का एसपी होता था। अभी देहाती समाज का पारंपरिक मिजाज सलामत था। कई बार ऐसा हुआ कि शाम के समय सरकारी बस में लड़कियों से हुड़दंग करते शोहदों को ड्राइवर-कंडक्टर अपनी बस में ही घेर कर एसपी निवास पर ले आते कि पुलिस उनका इलाज करे और दूसरों को भी सबक हो। 2005 में मैं रोहतक रेंज का आईजी लगा। तब तक जमीनी तस्वीर इतनी बदल चुकी थी कि गाँव की लड़की का देह व्यापार में लिप्त मिलना और उसी गाँव से ग्राहक का भी होना कोई बड़ा रहस्य नहीं रह गए थे।

नब्बे के दशक में आये उदारीकरण के दौर ने हरियाणा के ऐसे तमाम गावों में 'बुग्गी ब्रिगेड' के रूप में खेती से विमुख बेरोजगारों के आवारा झुण्ड पैदा कर दिए थे। पंजाब के गावों में भी इस दौरान उत्तरोत्तर नशे का चलन बढ़ता गया है। लेकिन मंडी और एमएसपी व्यवस्था ने कृषि और किसानी के जुड़ाव को जिंदा रखा हुआ था। कॉर्पोरेट कृषि व्यवस्था इसे जड़ों से अस्थिर करने वाली प्रणाली है।

मोदी सरकार के लाख आश्वासनों के बावजूद नए कृषि कानून एमएसपी हटाने की दिशा में ही निर्णायक कदम हैं। कॉर्पोरेट अर्थशास्त्री गुरचरण दास ने, मोदी के इरादों को शब्द देते हुए, किसानों को इनसे मिलने जा रही तीन 'स्वतंत्रता' गिनायी हैं- मंडी से इतर भी फसल बेचने की स्वतंत्रता, भंडारण की असीमित छूट मिलने के चलते सीधे कोल्ड स्टोरेज से मोल-भाव की स्वतंत्रता, फसल के खतरों को फॉरवर्ड कॉन्ट्रैक्ट के जरिये कारपोरेट को स्थानांतरित करने की स्वतंत्रता। लेकिन, किसान जानते हैं, ये तीनों क्रमशः प्राइस सुरक्षा, खाद्य सुरक्षा और भूमि सुरक्षा में लगने वाली सेंध हैं।

दरअसल, मोदी सरकार के कृषि बिलों से आंदोलित हुए किसान का राजनीतिक असर, सामाजिक मान और आर्थिक स्थिरता तीनों अधर में रहेंगे।

(पूर्व डायरेक्टर, नेशनल पुलिस अकादमी, हैदराबाद)

राष्ट्रीय

भारत के डीएनए को बदलना मुश्किल ही नहीं नामुमकिन है

यूसुफ किरमानी

पिछली सदी के बड़े शायर अल्लामा इक़बाल ने जो तराना लिखा था - सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा। उसके वर्षों बाद बाबा साहब आंबेडकर के नेतृत्व में संविधान सभा ने संविधान में दर्ज किया-वी द पीपल आफ इंडिया (हम भारत के लोग) ....। भाजपा और आरएसएस की गतिविधियाँ देखकर हमारे कुछ लिबरल साथी डर जाते हैं कि इनसे कौन लड़ेगा लेकिन अल्लामा इक़बाल, डॉ आंबेडकर, भगत सिंह, गांधी, नेहरू जिस भारत की कल्पना करके गये थे, भारत उस तस्वीर को बार-बार पेश कर रहा है लेकिन उसके सिग्नल को भाजपा और आरएसएस पकड़ नहीं पा रहे हैं। शाहीन बाग पार्ट 1 और शाहीन बाग 2 यानी किसान आंदोलन ने एक बार फिर साबित किया कि भारत के डीएनए में धर्मनिरपेक्षता के बीज बहुत गहरे बोए गए हैं।

धर्म निरपेक्षता की ताज़ा मिसाल देखनी हो तो किसान आंदोलन को देखिए। पंजाब का मालेरकोटला दिल्ली के सिंघु बॉर्डर पर किसानों के पास आ पहुंचा ो है। लोग हैरान होकर उन टोपी वाले युवकों को देख रहे हैं जिनकी पहचान कपड़ों से कराई जाती रही है। किसान आंदोलन ऐसे भारत की तस्वीर बनता नजर आ रहा है, जिससे वो ताकतें चिढ़ती हैं जो इसके खिलाफ पूरी ताकत से सक्रिय रहती हैं। मलेरकोटला के लोगों के बेमिसाल कारनामे मध्यवर्गीय पंजाबियों के ड्राइंगरूम में ताजा चर्चा का विषय हैं। किसान आंदोलन आगे क्या रुख लेगा कोई नहीं जानता। केन्द्र सरकार ने किसान नेताओं को 9 दिसम्बर को फिर से बातचीत के लिए बुलाया है। किसान आंदोलन से देशभर में जिस तरह का संदेश जा रहा है, वो कोरोना काल में एक चमत्कार से कम नहीं है। पूरा देश किसानों के साथ लामबंद हो गया लगता है। मलेरकोटला से आये लोग इसी लामबंदी का नतीजा है।

पांच दिसम्बर की रात एक ट्रक दिल्ली में सिंघु बॉर्डर पर आकर रुका। ट्रक अनाज और सब्जियों से भरा हुआ था। एक दूसरे ट्रक में बड़े बड़े पतीले उतरे, जिनमें खाना बनता है। मुसलमानी टोपी लगाये कुछ युवक और बुजुर्ग आगे बढ़े और उन्होंने पहले पतीले उतारे और फिर अनाज। धीरे-धीरे लोग वहां जुटने लगे। खुद रैली में आये किसानों के लिए वो लोग कौतूहल का सबब बन गए। उन्होंने बताया कि वे लोग मलेरकोटला से

मुसलमानों का सिखों से भाईचारा सिर्फ किसान आंदोलन के दौरान ही नहीं हुआ है

आये हैं और अपने किसान भाइयों के लिए यहां पर लंगर शुरू करेंगे।

मुझे फौरन शाहीनबाग याद आ गया, जहां अकेले सिख एडवोकेट डी.एस. बिन्द्रा ने गुरु का लंगर शुरू किया और लंगर के लिए उन्होंने अपना फ्लैट तक बेच दिया। बाद में दिल्ली पुलिस ने उन्हें कथित दंगाई और साजिशकर्ता बताकर उनका नाम भी उस सूची में डाल दिया। मैंने मलेरकोटला से आये युवकों से कहा कि आप लोग तो शाहीनबाग का कर्ज उतारने आ गए। उन्होंने मुझे टोका। उन्होंने कहा कि आप शायद मलेरकोटला का इतिहास नहीं जानते हैं। हमारे अतीत को टटोल कर देखिए तो सही।

सचमुच मलेरकोटला का इतिहास इस मामले में बेमिसाल है। पंजाब का यह इकलौता ऐसा शहर है जो मुस्लिम बहुल है। 2011 की जनगणना के मुताबिक मलेरकोटला शहर की आबादी 1,35,424 है। जिसमें 68.5 फीसदी मुसलमान, 20.71 हिन्दू, 9.50 फीसदी सिख और 1.29 फीसदी अन्य की आबादी है। जिन किसानों को आप आज सिंगू बॉर्डर और टीकरी बर्डर पर बैठा हुआ पा रहे हैं, उनका आंदोलन तो तीनों कृषि कानूनों के पास होते ही सितम्बर में शुरू हो गया था। सितम्बर में जब किसान सड़कों पर प्रदर्शन के लिए आने लगे तो मलेरकोटला के मुसलमान एक गुरुद्वारे में अनाज की तीन सौ बोरियां लेकर लंगर चलाने के लिए पहुंच गए थे। उस समय यह खबर मीडिया में चर्चा का विषय बन गई थी। लेकिन मलेरकोटला के मुसलमानों का सिखों से भाईचारा इस किसान आंदोलन के दौरान ही नहीं हुआ है।

यह सिलसिला औरंगजेब के समय से बना हुआ है। औरंगजेब ने गुरु गोबिन्द सिंह को 1705 में सरहिंद में गिरफ्तार कर लिया और उनके साहबजादों को दीवार में चुनवाने का आदेश दिया। उस समय मलेरकोटला के नवाब शेर मोहम्मद खान ने औरंगजेब के इस आदेश का विरोध किया था। इससे पहले गुरु गोबिन्द सिंह को नवाब ने अपने महल में छिपाया था। वहां से विदा लेते हुए गुरु गोबिन्द सिंह ने नवाब को अपना अंगरखा भेंट किया जो आज भी वहां मौजूद है। यह वह ऐतिहासिक घटना है जो बिना नमक-मिर्च लगाये हुए मलेरकोटला में पीढ़ी दर पीढ़ी ट्रांसफर होती रहती है। इस कहानी के पुनर्लेखन की हर संघी कोशिश नाकाम हो गई। किसान आंदोलन ने इस कहानी से भी आगे जाकर इस रिश्ते को और मजबूत कर दिया है।

भारत का बंटवारा होकर जब पाकिस्तान बना तो उस समय बड़े पैमाने पर दोनों तरफ कत्ल-ए-आम हुआ। पंजाब के भी दो टुकड़े हुए। सबसे ज्यादा खून दोनों तरफ के पंजाब में बहा लेकिन उस समय भारतीय पंजाब का मलेरकोटला ही ऐसा इलाका था, जहां किसी भी तरह का खून खराबा नहीं हुआ। उस समय नवाब इफ्तिखार अली खान ने अपने महल का दरवाजा मलेरकोटला के उन सिख परिवारों के लिए खोल दिया था जो वहां शरण लेना चाहते थे।

लखनऊ की तहजीब के किस्से और किंवदंतियां तो आपने बहुत सुनी होंगी लेकिन मेरे साथ इस शहर का जो अनुभव रहा है, वैसी तहजीब मुझे लखनऊ में नहीं दिखी। पंजाब में अमर उजाला अखबार के लिए काम करने के दौरान मुझे मलेरकोटला जाना पड़ा। मैं पहली बार शहर में पहुंचा था और उसके भूगोल से पूरी तरह नावाकिफ। मेरा रिक्शा किसी मुहल्ले में एक चौराहे पर आकर रुका। वहां खड़े कुछ लोगों से मैं एक पता पूछने लगा तो उन्होंने कहा कि आप शायद इस शहर में नये हैं। थके और परेशान लग रहे हैं। पहले आप हमारे घर चलिए, फिर आपको वहां पहुंचा देंगे। मैंने कहा कि भाई, आप मुझे जानते तक नहीं। मेहरबानी करके मुझे बस वहां पहुंचा दें। लेकिन वहां खड़े लोगों में आपस में बहस होने लगी कि मैं किसके घर की मेहननवाजी कबूल करूं। खैर, जिन साहब ने मेरा बैग थामा, मैं उनके साथ हो लिया। तब तक वो नहीं जानते थे कि मैं एक पत्रकार हूं। बहरहाल, वो अपने घर ले गए। वहां पराठे और आमलेट का नाश्ता कराने के बाद लस्सी का बड़ा सा गिलास पेश किया, जिसे आधा पीना भी मेरे लिए मुश्किल लग रहा था। इस आवभगत में तीन घंटे बीत गए। फिर वो साहब मुझे उसे पते पर ले गए, दरअसल, जहां मुझे पहुंचना था। मैंने उनसे पूछा भी कि साहब, मेहमानवाजी का ऐसा तरीका तो हमारे अवध में नहीं मिलता। उनका जवाब था कि अल्लाह ने बहुत दिनों बाद कोई मेहमान भेजा था, हम उसे खाली कैसे जाने देते।

मलेरकोटला की इस तहजीब के दर्शन बीच-बीच में और लोगों की जुबानी और मीडिया के सहारे पहुंचते रहे। लेकिन सितम्बर में पंजाब में और अब दिल्ली के सिंघु बॉर्डर पर मलेरकोटला के लंगर ने वही यादें फिर से ताजा कर दी हैं। वहां से आये अरशद नामक युवक ने कहा कि दिल्ली का शाहीनबाग मलेरकोटला से बहुत दूर है। हम भी वहां बैठकर अपने सिख भाइयों के लंगर की कहानी सुनते थे कि कैसे सीए-एनआरसी आंदोलन के दौरान गुरुद्वारों से लंगर धरने पर बैठी हमारी मां-बहनों तक पहुंचाया गया। बीच में कोरोना की वजह से प्रवासी लोग पंजाब और दिल्ली छोड़कर यूपी और बिहार की तरफ अपने घरों को कूच करने लगे तो गुरुद्वारों ने बिना किसी भेदभाव के इन मजदूरों को शरण दी, खाना खिलाया, पैसे दिए। कश्मीरी छात्र-छात्राओं को जब दिल्ली एनसीआर में मारा-पीटा गया तो इन्हीं गुरुद्वारों ने उनकी मदद की। हम भला अपने सिख भाइयों के इस एहसान का शुक्रिया कैसे अदा करें। किसान भाई अपनी जायज मांगों के लिए दिल्ली आये हैं। हम पंजाब में रहते हैं, हमें मालूम है कि किसान भाई किन हालात से गुजर रहे हैं। हम अब इनके साथ नहीं खड़े होंगे तो कब खड़े होंगे।

किसान आंदोलन में कुछ नया हो और बीजेपी के आईटी सेल को इसका पता नहीं चले, यह नामुमकिन है। मलेरकोटला का लंगर ठीक से शुरू भी नहीं हुआ कि आईटी ने सोशल मीडिया पर मलेरकोटला से आये मुसलमान जत्थे के खिलाफ जहर उगलना शुरू कर दिया। आईटी सेल के लिए एक ट्वीट के बदले पांच रुपये पाने वाले लोगों की भाषा मैं यहां नहीं लिख सकता हूं। इन लोगों ने सिख गुरुओं की वाणी का हवाला देकर सिखों को ऐसी-ऐसी बातें कहीं, जिनका उल्लेख मैं जरूरी नहीं समझ रहा हूं। अब जब मैं इस रिपोर्ट को फाइल कर रहा हूं तो आईटी सेल का निन्दा अभियान बराबर जारी है। कुछ लोगों ने ऐसे शरारतपूर्ण सवाल किये कि लंगर शाकाहारी है या मांसाहारी है। हलाल मिलेगा या झटका। बीजेपी आईटी सेल सिखों को मुगलों का इतिहास याद दिला रहा है लेकिन उन्हें जवाब भी बराबर मिल रहा है कि यह 1706 नहीं है, यह 2020 है। हम अपना इतिहास बना रहे हैं और लिख भी रहे हैं।...

मलेरकोटला के इस जत्थे के अलावा बड़ी तादाद में अब छात्र संगठनों के लोग भी यहाँ पहुँचने लगे हैं। दिल्ली यूनिवर्सिटी से आये कुछ छात्रों को मैंने यहाँ खाना परोसते देखा। सोनीपत से आई सामाजिक कार्यकर्ता प्रवेश कुमारी ने बताया कि हरियाणा के कई छात्र संगठनों के कार्यकर्ता हमारे साथ यहाँ जुड़े हुए हैं। उनका कहना है कि जल्द ही हरियाणा से और भी युवा साथी यहाँ हमसे जुड़ने वाले हैं। सरकार को जल्द ही यह एहसास हो जाएगा कि अब यह सिर्फ किसानों का आंदोलन नहीं है। यह देश को महँगाई और भुखमरी से भी बचाने का आंदोलन है।

(यूसुफ किरमानी वरिष्ठ पत्रकार और राजनीतिक विश्लेषक हैं)